रवि शाक्य, इखाछेँ, यल

धर्मरत्न 'यमि'

लेखक—

—महापंडित राहुल सांकृत्यायन

धर्मरत्न 'यमि'

(आज के नेपालका राजनीतिक सिपाही)

प्रकाशक—

शंकरबहादुर कार्की क्षेत्री
कमल पोखरी,
काठमाण्डू,
नेपाल ।

लेखक —

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

मूल्य नेपाली । ३० पैसा

१९५४

प्रकाशक का वक्तव्य

विश्वविख्यात महापण्डित राहुल सांकृत्यायन लिखित यमि जी की जीवनी को पाठकों के समक्ष प्रकाशित कर रख रहा हुं। राहुलजी ने नयी दिल्ली सस्ता साहित्य मण्डल से निकलने वाला मासिकपत्र "जीवन-साहित्य" मे क्रमश तीन अंकों (१९५३ मै, जून, और जुलाई) में "नेपाली नेता धर्मरत्न यमी" शिर्शक, लेख के रुप में लिखे थे। उसीको एकत्रित कर यह पुस्तिका के रुप में यहां प्रस्तुत किया गया हुं। इस छोटीसी पुस्तक में यमिजी की जीवनी के साथ विक्रमी संवत १९९५ साल से घटी नेपाली राजनीतिक घटना की झाँकी भी पायीगी। इस पुस्तिका के नायक (यमि) से मेरा परिचय केवल इस पुस्तिका को पढ कर ही नही मिला वरन् गत वि. सं. २००६ साल के राजनीतिक जेल जीवन भी यमि जी से ७ महिना तक बिताने पाया था। और ज्यादा लिखने की जरुरत नहीं पुस्तिका को आद्योपांत पढने से सभी ज्ञात होगा कि यमिजी कितनी गयी गुजरी हालत को झेल कर आगे बढे! भावी देश-सेवकों को इस पुस्तिका से बड़ी प्रेरणा और उत्साह मिलेगा, यही मेरी इच्छा हैं।

शंकर बहादुर कार्की छेत्री
कमल पोखरी
१०-२-१९५४

धर्मरत्न 'यमि'

(आज के नेपाल का एक राजनीतिक सिपाही)

धर्मरत्न के दादा रत्नदास नेपाल की राजधानी के एक धनी-मानी सेठ थे। उनतीस वर्षों तक नेपाल के राणा तानाशाह चन्द्रशमशेर के वह राज-व्यापारी थे। चन्द्रशमशेर के लिए सारा सामान खरीदने का काम साहू रत्नदास के हाथ में था। इस व्यापार में नफा भी था और घाटे का भी डर था, किन्तु राज-व्यापारी होने के साथ में एक गौरव भी था। एक बार चन्द्रशमशेर के लिए उन्होंने बहुत भारी परिणाम में मिस्री खरीदकर मंगवाई, जिस में छः गुना नफा हुआ। ईर्ष्यालुओं ने चुगली खाई तो चन्द्र-शमशेर ने टोका। इस पर साहू रत्नदास ने बतलाया कि और चीजों में हमें घाटा भी हुआ है। रत्नदास आत्माभिमानी पुरुष थे। राणा तानाशाह के सामने जितना नीच बनने की आवश्यकता थी, उतना बनने में असमर्थ थे. और दूसरों के लिए तो वह घमंडी से लगते थे। लोगों ने कह-कह कर चन्द्रशमशेर को रत्नदास के विरुद्ध कर दिया। चन्द्रशमशेर बडा ही कुटिल तानाशाह था। वह सीधे प्रहार न करके छिपकर तीर मारने का अभ्यासी था। एक समय रत्नदास को साठ हजार का घाटा पड़ा। इसी समय चन्द्रशमशेर ने तुरंत रुपया जमा करने का हुकम दिया— रत्नदास ने अपने सम्बन्धी घोराशा (धालासिको साहु से उधार ले पैसा दे दिया और साथ ही सरकारी ठेका छोड दिया।

रत्नदास ने अब व्यापार के नये क्षेत्र में पैर रक्खा और पंद्रह हजार लगाकर जूता बनाने का काम शुरू किया। उनकी बडी मांग हुई और व्यापार चल निकला। इसी बीच चन्द्रशमशेर ने अपना ठेका किसी दूसरेको दिया था, जो ठीक से काम नहीं कर सका। चन्द्रशमशेर घूमते-घामते एक दिन बूढे से मिला और उसे मीठी-मीठी बाते करके अपने महल-सिंह दरबार-ले गया। यह भी आश्वासन दिया कि हम ठेका तुम्हींको देंगे।

लेकिन रत्नदास को मरने (१९२२ ई०) से पहिले अभी बहुत से बुरे दिन देखने थे। घोराशा की लडकी उनके बेटे से व्याही थी, लेकिन व्यापारी कब किसी का मीत होता है। घोराशा ने अपने कर्जेके लिए तकाजा किया और न देने पर घर में ताला लगा दिया। उनका दामाद मानदास अपने ससुर से झगड रहा था, इसकी स्मृति धर्मरत्न के बाल हृदय पर अब भी अंकित है। रत्नदास को बहुत दिनों तक साँसत सहने की जरूरत नहीं पडी और दो महीने के भीतर ही उन्हे मृत्यु ने अपनी गोद में ले लिया। रत्नदास के चार लडके आशारत्न, भवानीरत्न, मानदास और हर्षदास अब बाट के भिखारी बने। उस समय ल्हासा में रत्नदास साहू की कोठी मौजूद थी, और उससे परिवार को सहारा मिल सकता था, लेकिन बडे लडके आशारत्न ने मदिरा और मदिरेक्षणा के ऊपर सब चौपट कर दिया। किन्तु हालत संभालने में साहू के जेठे लडके ही नहीं, वल्कि मझले (माहिला) भवानीरत्न भी भारी बाधक थे। उन्होंने एक दूसरी जाति की रखेल रख ली थी, और बाप के समय खूब पैसा उडाते रहे। वह अपनी पत्नी अर्थात् धर्मरत्न की मां को बहुत उपेक्षित रखते। वह

बेचारी अपने लडकों के लिए किसी तरह मायके में जीवन बिताती थी। बाट के भिखारी हो जाने पर भी आखिर नेवार व्यापारी की सहज बुद्धि भवानीरत्न के पास थी। उन्होंने चावल-दाल की दुकान की, लेकिन मितव्ययिता तो जानते नहीं थे, इसलिए असफल होना पडा। मानदास और हर्षदास दोनों छोटे भाई नेपाल में कोई आशा न देख तिब्बत चले गये। भवानीरत्न ने भी अब कहीं भाग्य-परीक्षा करने का निश्चय किया। उपेक्षिता पत्नी से जेवर मांगा, लेकिन उसे सदेह हुआ कि रखेल को देने के लिए मांग रहे हैं इसलिए जेवर नहीं दिया। भवानीरत्न किसी तरह कलिम्पोंग पहुंचे। साइकिल का काम शुरू किया। असफल हो कलिम्पोंग से दार्जिलिंग जाकर टोपी-साइकिल की दुकान की, लेकिन वहाँ भी भाग्यने साथ नहीं दिया। इसी समय नेपाल के एक बडे कोठी-वाल धर्ममानसाहू से उनका परिचय हुआ। साहू ने तिब्बत में अपनी फरीजोङ वाली दूकान में भेज दिया। भवानीरत्न फजूलखर्ची थे, लेकिन साथ ही बडे ही ईमानदार और मेहनती थे। कुछ ही समय बाद साहू ने उन्हें अपनी ल्हासा की कोठी में मुख्य-कर्मचारी बनाकर भेज दिया, जहां उन्होंने ११ वर्ष, १६३४ ई० तक काम किया।

धर्मरत्न अपनी मां के साथ रहते थे। भूख के मारे घर की बुरी हालत थी, उन्होंने अपने बाल्यकाल में हर तरह के अभाव की पाठशाला में पहला पाठ पढा। आठ वर्ष की उमर में साहू के बडे नाती को कुछ समय के लिये सरकारी संस्कृत पाठशाला में बाबूकाजी के पास पढ़ने के लिए भी बैठाया

गया था, लेकिन पढ़ाई अक्षर-परिचय से बहुत आगे नहीं बढ़ सकी।

धर्मरत्न का परिवार परम दरिद्र होते भी कुलीन सेठों का परिवार था, इसलिए सहायता करनेवाले सम्बन्धी कभी-कभी मिल ही जाते। उनकी अपनी नानी मर चुकी थी, लेकिन सौतेली नानी का धर्मरत्न और उनकी मां पर स्नेह या दया थी। उसने धर्मरत्न को अपने पास रखा। नानी के भतीजे ने उन्हें पढ़ाना शुरू किया। आखिर नानी कितने दिनों तक मां-बेटे का बोझ अपने सिर पर उठाती। उसने यही अच्छा समझा कि लड़का कुछ अपने लिये कमाये, इसलिए तमोर (ताम्रकार) के यहां भाथी चलाले के लिये पांच रुपये महीने पर नौकर रखवा दिया। नगर के सेठ का पोता अब तीन वर्ष तक भाथी धोंकता रहा। लेकिन बौद्धों (गुभाजु और उदासों) के पारस्परिक मतभेद के कारण इस काम से भी उन्हें हाथ धोना पड़ा। तमोर एक पक्ष के साथ थे और धर्मरत्न दूसरे के। वे फिर बेकार हो गये।

लक्ष्मीप्रसादखरदार ने बेकार तरुण को देखकर तीन रुपये महीने पर रख लिया, जहां साल भर वह कपडे के जूते बनाने का काम करते रहे। इसी समय दादा का एक पुराना नौकर मिला। धमरत्न ने अपनी गाथा सुनाई और उसने उन्हें जूता बनाने का काम ही ठेके पर दे दिया। धर्मरत्न ने पहिले ही महीने में ३५ रु० कमा लिये। अब धर्मरत्न का जूते बनाने का काम चल निकला। वह खर्च चलाकर अपनी आमदनी में से ६ रु० महीना नानी को देते।

इस पर भी साल भर में १५५ रु० उनके पास जमा हो गये। धर्मरत्न का जीवन अब निश्चिंत-सा चल रहा था। इसी समय सस्ते जापानी कपडे के जूते नेपाल में भर गये। महगे हाथ के कपडे के जूतों को कौन खरीदता ? कारखाना बन्द हो गया और सत्रह वर्ष के धर्मरत्न फिर बाट के भिखारी हो गये। नानी ने ब्याह करने के लिए बहुत जोर दिया, लेकिन धर्मरत्न ने इन्कार करके अपने लिए अच्छा ही किया। जूता सीने का काम छूट जाने पर वह भोटाहिटी में एक मित्र की सहायता से ६ महीने तक दलाली भी करते रहे। उनके छोटे चचा हर्षदास मोहनशमशेर के यहां बडे राईटर थे। धर्मरत्न की पढ़ाई तेरह-बाईस ही हुई थी, इसलिए चचा क्या सहायता करते ? चचा ने बाप के पास ल्हासा जाने की सलाह दी, लेकिन नानी और मां इस पर सहमत नहीं थीं— उपेक्षक बाप न जाने बेटे के साथ कैसा बर्ताव करे ? अथवा भोट के खतरनाक रास्तों में ही लड़के पर संकट न आ जाय। लेकीन धर्मरत्न विदेश में व्यापार करनेवाले सार्थवाहों के कुल में पैदा हुए थे, साहस-यात्रा जिनके नस-नस में होती है। एक दिन नानी को दिये अपने ही एक सौ एक्कीस रुपये चुरा कर वह भाग निकले।

डेढ़ महीना तक टक्कर मारकर हार गये, सब रुपया उड़ गया लेकिन कोई काम नहीं मिला। मिशनरियों के इंडस्ट्रियल स्कूल में भरती होने के लिए तैयार थे, परन्तु आखिर धर्ममान साहू के ज्येष्ठ पुत्र श्री त्रिरत्नमानसाहू ने ल्हासा में अपनो

कोठी में काम देने का वचन देकर सफर-खर्च के लिये पचहत्तर रुपये दे दिये।

मेरी दूसरी तिब्बत यात्रा से एक साल पहले धर्मरत्न ने तिब्बत की पहली यात्रा की थी। छः सात महीने के भीतर ही उन्होंने तिब्बती बोलना सीख लिया। उनके लिये तिब्बती सीखना बहुत जरूरी और आसान भी था, क्योंकि तिब्बत में उसे छोड़ बोलचाल का कोई दूसरा माध्यम नहीं था। थोडे ही दिनों बाद मालिक ने फरीजोङ की अपनी दूकान में उन्हें काम सोप दिया।

अब धर्मरत्न छूशिन्‌सा (धर्ममान साहू की कोठी) के एक विश्वस्त कर्मचारी थे। कभी फरी में रहते और कभी ल्हासा में। उसी साल (१६३४) के जाडों की कथा है। तिब्बत के नेपाली व्यापारियों के लिए वहां से भारत पैसा भेजकर माल मंगाना एक बड़ी समस्या है। ल्हासा से पांच-छः दिन के रास्ते पर ग्यांची में भारतीय डाकखाने और तार-घर का होना व्यापारियों के लिए बडे भाग्य की बात समझिये। वह वहां से नगद और कीमती माल ग्यांची के डाकखाने द्वारा अपनी कलकत्ता या कलिम्पोंग वाली कोठियों में भेज दिया करते। धर्मरत्न जाडो में एक लाख नकद, पैंतीस हजार का सोना और पचीस हजार की कस्तूरी लेकर ल्हासा से ग्यांची की ओर चले। साहू लोगों के खच्चर वाले नौकर सोनम्-ग्यं-जे की खूनी उद्दंडता का परिचय इन पंक्तियों के लेखक को भी उसी साल मिल चुका था, जब कि उसने तलवार उठा ली थी। धर्मरत्न नागर्चे के पड़ाव पर पहुंचे और

वहां अपने नैवार भाई के टिकने के स्थान में उसी के साथ ठहरे। सोनम् नौकर थोडे ही था। वह तो अपने को बेताज का बादशाह समझता था। उसने डांटकर कहा 'यहां क्यों बैठा ?' और मुक्का मार कर संतोष न कर छुरी भी निकाल ली। धर्मरत्न ने भाग कर छत पर शरण ली। लोगों ने सोनम् के ऊपर भूत चढ़ा समझ कर भूत निकालने का उपचार करना शुरू किया। घर के मालिक ने धर्मरत्न को समझाया कि कोई पर्वाह नहीं, भूत आया था, अब चला गया। लेकिन धर्मरत्न कैसे विश्वास करते कि अगले तीन दिन के रास्ते में भूत फिर नहीं लौट आयगा। धर्मरत्न ने अगली यात्रा सोनम् को आगे-आ कर तमंचा संभाल कर की।

१६३३ ई० से धर्मरत्न अपने पिता की तरह छुशिन्सा के कर्मचारी थे। छुशिन्सा एक समय ल्हासा की सबसे बड़ी कोठी थी, लेकिन अब उसके बुरे दिन आने शुरू हुए। धर्ममान साहु बडे धर्मात्मा और दानी पुरुष थे। बुढ़ापे में अब दूर तक सोचने की शक्ति उनमें नहीं थी, इसलिए और दान-पुण्य के अलावा ७५ हजार रुपया निकालकर उन्होंने नेपाल में स्तूपों और विहारों के बनाने आदि में खर्च किये। उधर लद्दाख में जो शाखा खोली थी, उसमें नौकरों की बेपर्वाही स पचीस-तीस हजार का नुकसान हुआ। व्यापार भी अब वैसा चल नहीं रहा था, इसलिए नौकरों का वेतन नहीं दिया जा सका। धर्मरत्न ने अपने सहयोगियों को हड़ताल करने की सलाह दी और स्वयं काम छोड़ दिया। ल्हासा में रहते धर्मरत्न वहां के चीनी अफसर के यहां भी जाया-आया

करते थे, जिसके कारण वह चीनी भी कुछ सीख गये थे। एक हफ्ते की हड़ताल के बाद मालिकों से समझौता हुआ। कर्मचारियों के खाने-कपडे का खर्च मालिक दे ही रहे थे, वेतन ऐसे ही घपले में पड़ा हुआ था। अब धर्मरत्न के पिता भवानीरत्न का वेतन आठ सौ, धीरेंद्रवज्र का पांच सौ और बाकी कर्मचारियों का तीन सौ साठ रु० वार्षिक निश्चित हुआ। मालिकों के साथ धर्मरत्न के इस तरह के बर्ताव को पिता ने बिल्कुल पसन्द नहीं किया। वह पुराने ढंग के भद्र पुरुष थे, मालिक के नमक को प्राणों से भी अधिक मानते थे। यह चिन्ता उनके मन में थी ही। छः सात महीने बाद धर्मरत्न की मां के मरने की खबर जब मिली, तो उन्हें अपने किये पर भारी पश्चाताप हुआ। दो-तीन दिन तक उन्हें नींद नहीं आई। धर्मरत्न ने पिता के मन को बहलाना चाहा और तै हुआ कि रुपया मिलते ही देश चले चलें। इस तरह निश्चित हो एक दिन दोपहर के वक्त धर्मरत्न आटा खरीदने गये थे। इसी समय खबर पाकर वह दौडे-दौडे आये। दिन के १ बजे निचले तल्ले के एक अंधेरे कोने में फ्रेंच-पिस्तोल को माहिला साहू दाग चुके थे। पुत्र के पहुचते-पहुंचते उनका शरीर ठंडा हो गया।

मालिक के प्रतिद्वंद्वियों ने धर्मरत्न को बहुत उकसाया, नेपाली दूतावास के लोगों ने भी भड़काया, लेकिन धर्मरत्न का एक ही जवाब था—"मैं पिता के खून के लिये अब मालिकों को तंग नहीं करूंगा।" माहिला साहू ने मरने से पहिले लिख कर तीन चिट्ठियां पैसे की सन्दूक के नीचे रख छोड़ी थी।

नेपाली राजदूत को उन्होंने लिखा था— "मैं अपनी खुशी से आत्महत्या कर रहा हूं। हीरे की कनी चाटी और कड़वे तेल में अफीम डालकर भी पिया, लेकिन उनसे मृत्यु नहीं हुई। अब मैं पिस्तौल की गोली से अपना जीवन खतम कर रहा हूं। इसमें किसी का दोष नहीं है।" पुत्र और भाई को यही लिखा था, कि मैं अपनी नालायकी के कारण तुम्हारे लिए कुछ नहीं कर सका।

धर्मरत्न दूसरे नेपालियों की तरह तिब्बती भाषा बोल लेने भर ही से संतोष नहीं करते थे बल्कि उन्होंने उसपर पूरा अधिकार करने की कोशिश की। इसमें एक तिब्बती तरुणी का प्रेम भी कारण हुआ। वह प्रेम करती थी लेकिन नेवार और तिब्बत के बीच पीढ़ियों से जो खाई पड़ी हुई है, उसको देखकर वह धर्मरत्न को वरण करने के लिये तैयार नहीं होती थी। धर्मरत्न ने अपनी प्रेमिका के उपर तिब्बती भाषा में कई कवितायें लिखीं और अपनी द्वितीय जेलयात्रा में तो 'तिब्बत का जवाब' नामक एक खंड काव्य भी लिख डाला। अब धर्मरत्न का मस्तिष्क उद्बुद्ध था। वह जानते थे कि कोई तिब्बती तरुणी क्यों किसी नेवार को अपना हृदय देने लगी, जब कि वह जानती है कि उसका पुत्र नेपाली खचरा (दोगला) होकर जीवनभर लांछित ही नहीं, बल्कि बाप की सम्पति में एक कौडी का भी अधिकारी नहीं होगा और उसकी लड़की तिब्बती सरकार की उपेक्षित प्रजा कहलायगी।

इससे पहले एक और बानक बना, जिससे धर्मरत्न की जीवनधारा को दूसरी ओर मोड़ दिया चटगांव के क्रांतिकारियों में से एक अन्नदानन्द परिव्राजक ने देश से भागकर घूमते-घामते ल्हासा पहुंचनेमें सफलता पाई। धर्मरत्न को उनके सत्संगका मौका मिला। परिव्राजक उनके हृदय में यह अंकित कराने में सफल हुए, कि नेपाली लोगों को कुली और सिपाही की अपमानपूर्ण अवस्था से निकालने की आवश्यकता है, जिसके लिए राणाशाही से देश को स्वतंत्र करना पहला काम है। इस सत्संग का एक फल यह हुआ, कि अब वह राजनीतिक संबंधी हिन्दी पुस्तकों को ढूंढ-ढूंढ कर पढने लगे थे। ल्हासा में जो भी हिन्दी अखबार या पुस्तकें मिलतीं वह उन्हें ढूंढ-ढूंढ कर पढते। आरम्भ में समझना मुश्किल था, लेकिन हृदय में तीव्र जिज्ञासा थी, इसलिए उसने ही उन्हें भाषा सिखलाने का भी काम किया।

ल्हासा में धर्मरत्न की स्वतंन्त्र बुद्धि ने अपना एक और भी रंग दिखलाया। वह तिब्बती पंडितों के सम्पर्क में तो आये थे, चीनी अफसरों के साथ भी उनकी उठकबैठक थी। तिब्बती मुसलमानों के साथ अधिक हेलमेल होने से वह इस्लाम के बारे में भी कान देकर सुनते। नेपाली बौद्ध हिन्दू होने से मुसलमानों के साथ छूतछात का बर्ताव रखते, लेकिन, माचाला (धर्मरत्न) उनके साथ कोई भेदभाव नहीं रखते। अपने सत्संग का प्रभाव देखकर मुसलमानों को विश्वास हो गया कि अब माचाला दिल से मुसलम न हो गया। लेकिन जबतक मुसलमान लडकी से ब्याह न हो जाय, तबतक ऐसे ईमान का ठिकाना? एक दिन मालाचा के पास दो

बुजुर्ग मुसलमान पहुंचे। उन्होंने पूछा, "आपने तो सभी धर्मों को समझ लिया है। कौन धर्म आपको सब से अच्छा लगता है ?" माचाला ने उनके सामने यह स्वीकार किया, कि मुसलमानों का भाईचारा मुझे बहुत अच्छा लगता है। फिर लगे हाथों दोनों बुजुर्गों ने कहा कि अल्ला-ताला का नाम क्यों नहीं याद करते ? धर्मरत्न किसी का नाम याद करने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए बूढ़ों को बहुत निराशा हुई ।

१९३७ या '३८ ई० में धर्मरत्न अपने आठ सौ और पिता के पच्चीस सौ कुल ३३ सौ रुपयों के साथ नेपाल लौटे । उन्होने तीन हजार लगाकर जूते की दूकान खोली। लेकिन कुछ ही दिनों में खटपट हुई और मालिक ने घर से निकल जाने का नोटिस दे दिया । इस पर माचाला को दुनिया से बैराग्य हो उठा । दस रुपया और आधा तोला सोना लेकर उन्होंने नगर त्याग दिया। त्रिशूली पहुंचकर धोती रंगो और साधु का बाना बना लिया। फिर बेत्रावती गये। रास्ता कठिन था। बरसात का खतरनाक मौसम था। उनके पहुंचने से पांच-छ: घंटा पहले कई गावों को एक पहाड़ ने टूटकर दबा दिया था, नदी में कुछ तमंग बह गये थे, लेकिन धर्मरत्न को कोई पर्वाह नहीं थी। वह मैनछेन गुंबा के लामा के पास पहुंचे और डेढ महीना रहकर लामा से हठयोग की आसन आदि क्रियाओं को सीखते रहे। वहां रहते बच्चों को कुछ पढ़ाते भी थे। लेकिन उन्हें इसमें संतोष नहीं हुआ और फिर काठमांडू लौट आये। अब उन्होने राजनीति में पड़ने की ठान ली थी।

शुक्रराज शास्त्री, मुरलीधर शर्मा केदारमान 'व्यथित' तथा गंगालाल के साथ धर्मरत्न भी अब लोगों में राजनीतिक चेतना फैलाने के काम में लगे। इसी समय धर्मकथा करने की आड़ में राजनीतिक प्रचार का काम शुरू हुआ था। धर्मरत्न को देश से बाहर भी सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता मालूम हुई। पाल्पा पहुंच कर पश्चिमी नेपाल के इस इलाके के तरूणों में उन्होंने राजनीतिक चेतना फैलाने की कोशीश की। उसी समय नौकरी से वंचित भूतपूर्व गुप्तचर विभाग के एक अफसर तेगबहादुर मल्ल से उनकी भेंट हुई। अपने को रानाशाही का शत्रु बतलाता था। उसने तत्कालीन शासन के विरुद्ध प्रचार करने के लिये धर्मरत्न को पटना में जाकर श्री रामबृक्ष बेनीपुरी से मिलने के लिए राय देते हुये कुछ रुपये पैसे की भी मद्दत की।

धर्मरत्न भारत में आकर कुछ समय तक सारनाथ रहे। इस समय नेपाल में शुक्रराज शास्त्री पकडे गये। मुरलीधर शर्मा सारनाथ में ही आकर मिले। दोनों ने आगे के काम की योजना बनाई। भारत में राणाशाही के विरूद्ध प्रचार करने के लिये उन्होंने पहला काम पं० जवाहरलाल नेहरू से मिलने का निश्चय किया। नेपालियों की दुःख गाथा के साथ एक सुनहला अभिनन्दन-पत्र धर्मरत्न ने नेहरू के सामने पेश किया और नेपाल की अवस्था के बारे में बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। नेहरू उन्हें अपने साथ आनन्द भवन (प्रयाग) ले गये। धर्मरत्न ने उन्हें सारी अवस्था बतलाई। नेहरू ने कहा, 'कुछ करो।' लेकिन राणाशाही की जकडबंदी में कुछ करना सम्भव

नहीं था। यह विचार प्रकट करने पर नेहरू की झिडकी खाकर उन्होंने (यमीने) इतना ही कहा— "यदि हम कुछ कर सकते तो आपके यहाँ नहीं आते।"

इसके बाद धर्मरत्न पटना पहुंचे और 'जनता' सम्पादक बेनीपुरी से मिले। बेनीपुरी ने उनके उत्साह को बढाया और सल्लाह दी कि दस-बीस आदमियों को लेकर त्रिपुरी कांग्रेस (१६३६ ई०) में आओ। धर्मरत्न ने अखबारों के लिए वक्तव्य दिया— "नेपाली तरुण चुप नहीं हैं। हम स्वयं त्रिपुरी जा रहे हैं ...।" लेकिन जब उन्होंने कलकत्ते में जाकर नेपाली तरुणों को त्रिपुरी चलने के लिये कहा तो राणाशाही के आतंक के कारण कोई तैयार नहीं हुआ। फिर वह कालिम्पोग पहुंचे और तीन महीने तक लेक्चर देते और संगठन करते रहे। राजनीति ने धर्मरत्न को व्याख्याता बना दिया था। उस वक्त तक बीस तरुण प्रजापरिषद् में काम करने के लिए तयार हुए लेकिन अब भी त्रिपुरी जाने के लिए काफी आदमी नहीं मिले। जो मिले उनके लिए खर्च नहीं जुट सका। धर्मरत्न ने बेनीपुरी को निराशा जनक उत्तर दिया।

सौवर्ष पूर्व अनेक भीषण खूनी कांडों द्वारा जंगबहादुर ने पुश्तैनी प्रधान मन्त्री पद को संभालते हुए जब राजा के प्रभाव का अंत किया तबसे नेपाल के राजा ५ सरकार या धिराज—केवल मूरत बनाकर रख दिये गये थे। लेकिन धिराज वंशने राणा वंश के इस अत्याचार को चुपचाप बर्दाश्त नहीं किया। वह और उनके अनुयायी चाहते थे कि शक्ति उनके हाथ में चली आवे। वर्तमान धिराज त्रिभुवन चिर नजरबन्दी का जीवन बिताते हुए भी स्वतंत्र होने की भावना को अपने सीने में छिपाये हुए थे। उन्हें एक लाख

से कम की पेन्शन सारे परिवार के लिए मिलती थी; लेकिन जब प्रजा-परिषद् ने राणाशाही के खिलाफ संघर्ष करन का निश्चय किया और परिषद् का सम्बन्ध धिराज से हुआ, तो उन्होंने धन से मदद की। राजनीतिक संस्थाओं को धन का अभाव होता है, विशेषकर उनको जिनकी सक्रिय सहाभूति सबसे अधिक उत्पीड़ित लोगों के साथ है। लेकिन आसानी से अधिक रुपया मिलना भी कार्यकर्त्ताओं में लोभ पैदा कर संस्थाओं के लिए अनिष्ट का कारण होता है। निदान प्रजा-परिषद् में फूट पड गई और धिराज ने पैसा देना बन्द किया। इससे छः महीने पहले धिराज के महल (नारांहिटी) में राणाशाही के विरुद्ध एक षड्यंत्र करने का प्रयत्न किया गया था। योजना यह थी कि महारानी को बीमार बना दिया जाय, फिर बीमारी की भीषणता की सूचना समय-समय पर दी जाय औ एक दिन मरणासन्न बतलाकर प्रधान मन्त्री को बुलाया जाय। फिर उन्हें क्लोरोफार्म सुघा कर बेहोश अथवा गोली मार कर त्रिभुवन के शासनारूढ होने की घोषणा कर दी जाय। लेकिन, छः महिने तक कोई षड्यंत्र प्रधान मन्त्री के गुप्तचरों से भरे नारांहिटी महल में गुप्त कैसे रखा जा सकता था। बुलाने पर प्रधान मन्त्री युद्धशमशेर नहीं आये। दो घंटे बाद प्रधान मन्त्री के ज्येष्ठ पुत्र बहादुरशमशेर ने आकर धिराज को डाट बतलाई और अस्वाभाविक षड्यंत्र स्वाभाविक मौत मर गया। कुछ दिन पीछे शुक्रराज शास्त्री ने नेपाली इतिहास में सर्व प्रथम सार्वजनिक भाषण के रूप में गीता पढा, जिस में गंगालाल ने भी भाग लिया इसी अपराध में शास्त्रीजी को पकडा गया, साथ ही गंगालाल को भी, किंतु उनके पिता

ने पद्मशमशेर स माफी मांगकर अपने पुत्र को छुडा लिया। गंगालाल की इसमें बिल्कुल सहमति नहीं थी। वह इसके कारण बहुत दुखी हुए। इसी समय धर्मरत्न ने अपने एक मात्र छोटे भाई के व्याह का आयोजन किया। इस व्याह के उपलक्ष्य में हुई गोष्ठी में* नेवारी में एक राष्ट्रीय गीत गाया गया, जिसमें कमजोर जन-नेताओं पर छींटे फेंके गये थे। गंगालाल नै इसे अपने ऊपर व्यंग समझा और तुरंत उठकर अपने भावों को एक पद्य में व्यक्त किया—

" जेता नेतादि सबले मरनु साजा सबैको ।
हूं वीर नैपाल का वीर पुत्र··· ··· ··· ··· ।
···देश को निमित चितामा पुग्नु तैयार । "

उस समय लोगों को आश्चार्य हुआ और जब मुंहलाल किये २२ वर्ष का तरुण गंगालाल वहां से चला गया तो संगीत-मंडली भंग हो गई।

संगीत-मंडली के पांच दिन बाद हथियार के बल पर राणाशाही के मूलोच्छेद करने का प्रचार करते हुए एक बडा जबर्दस्त पैमफ्लेट निकला। धर्मरत्न ने सत्तर रुपये की भारी पूंजी लगाकर अपनी साबुन की दूकान खोल रक्खी थी, जो देशप्रेमी तरुणों और विद्यार्थियों के मिलने का अड्डा बन गई थी। तेगबहादुर मल्ल ने गुप्तचरी से बर्खास्त होने के बाद धमरत्न की सब प्रकार सहायता की थी। अब वह फिर अपने पद पर बहाल हो गया था। सिंहदरबार (प्रधान मन्त्री के महल) में खुफिया अफसरों

* पु. वा. नेवा "मानब' लिखित।

की बैठक हुई। तेगबहादुर मल्ल ने बतलाया कि साबुन वाले का इसमें खास हाथ है। उसे प्रलोभन या साँसत देकर फोड लेना चाहिए। राणाशाही के हरेक उम्मेदवार को अपने लिए हमेशा खतरा दिखाई पड़ता था, इसलिए सरकारी खुफिया-विभाग के अतिरिक्त हरेक के अपने खुफिया अफसर हुआ करते थे। प्रधान-मंत्री के ज्येष्ठ पुत्र बहादुरशमशेर को जब बतलाया गया कि प्रजा-परिषद् तुम्हारे पिता को खत्म करना चाहती है तो उन्होंने घुड़क कर कहा था, "मेरे बूढे बाप के प्राणों के ग्राहक क्यों बन रहे हैं? शक्ति तो चंद्रशमशेर के लड़कों के हाथ में है, उनके पीछे क्यों नहीं पड़ते?"

शहीद शुक्रराज शास्त्री का भाई राणाओं का भेदिया बन गया, जिससे परिषद् की कुछ बातों का पता लगा। राणा एवं थापा और बस्नेत आदि प्रभावशाली वंशों के अफसरों की बैठक हुई, जिसमें युद्ध के पौत्र आदि ने प्रधानमंत्री को कहा, "आप हुकुम दीजिये, हम सभी संदिग्ध व्यक्तियों को पीट-पाट कर रहस्य उगलवा लेंगे।" रोज की खबरें सुनते-सुनते बूढ़ा युद्धशमशेर बहुत डर गया था। उसने बात मान ली। मुरलीधर शर्मा प्रजापरिषद् के एक अगुआ के नाम पर उस वक्त बनारस में रहकर काम कर रहे थे। राणाओं ने उन्हें किसी बहाने से बुलवाया और भीमफेदी पहुंचते ही हथकड़ी डाल जेल में बन्द कर दिया। अब उन्हें डराना-धमकाना और प्रलोभन देना शुरू किया गया। वे कच्चे निकले और उन्होंने ८८ आदमियों के नाम दे दिए। विजया दशमी का पर्व बीत गया था। उसके दो-चार दिन बाद

पुलिस ने एक दम मुहल्ले के-मुहल्ले घेर कर सबको धर-पकड़ शुरू की। नाम लिखने में कुछ गलती हुई, इसलिए धर्मरत्न की जगह ज्योतिरत्न पकड़ लिये गए और धर्मरत्न दो दिन निश्चिंत बैठे रहे। फिर भागने के लिए निकले, किन्तु लौट कर गिरफ्तार हुए।

जेल और हवालात में धर्मरत्न के साथ जो बीती, वही बात कुछ कम और वैसी सभी के साथ हुई। गिरफ्तारों में धर्मरत्न का नम्बर ५१ वां था। पकडे हुए लोगों को अलग-अलग रक्खा गया था। हरेक आदमी पर गारद के अलावा एक-एक अठपहरिया (गारद) नियुक्त था।

लोगों से अपराध कबूल करवाने के लिए स्थान, एक स्कूल और समय, रात का चुना गया। बंदियों को एक-एक करके वहां ले गए।

धर्मरत्न से कहा गया—"साबुन की दुकान नहीं, तुमने प्रजापरिषद् के लिए ब्राडकास्टिंग स्टेशन खोल रक्खा है।" धर्मरत्न को मालूम हो ही गया था कि मुरलीधर ने एक-एक बात बतला दी है। उसके विश्वासघात से धर्मरत्न का खून खौल रहा था। मुरलीधर को साथ लिये जब उनके पास पूछने आये, तो उन्होंने कहा—'मुरलीधर को यहां से हटा दो तो मैं अपना बयान दूंगा।' मुरलीधर को हटाकर अधिकारियों ने कहा—'जो कुछ किया या सुना है, सब बतला दो।' इसपर धर्मरत्न ने कहा—'तब तो मुझे स्वयं अपना बयान लिखना पडेगा।' अधिकारी खुश हुए। उन्होंने कागज, कलम, दावात लाकर दे दी। धर्मरत्न को 'जो कुछ किया

सुना था, सब लिखना था इसलिए उन्होंने अपनी सारी जीवन-यात्रा ही कागज पर उतारनी शुरू की, छोड़ा केवल अपने राजनीतिक जीवन को। बिना पढे ही अफसर अपनी सफलता पर बडे खुश हुए।

लेकिन अगले दिन बयान पढ़ लेने के बाद कर्नल आग-बबूला हो आकर धर्मरत्न को गाली देने लगे। धर्मरत्न अपना रोयां गिराये एक गरीब नेवार-पुत्र की तरह गिड़गिड़ाकर कहने लगे—"मैं गरीब का पुत्र हूं। साबुन की दूकान करके पेट पालता था। आपने कियेसुने को लिखने के लिए कहा, मैंने सब लिख दिया।"

औरों की तरह धर्मरत्न को भी ठीक करने के लिए बिजली करन्ट लगाने का इन्तजाम हुआ, बेंत और बांस सामने रख दिये गए, तरह तरह का प्रलोभन दिया जाने लगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राजबन्दियों को ठीक करने का यह गुर राणाशाही ने अंग्रेजों की कलकत्ता-स्पेशल ब्रांच से सीखा था। पन्द्रह दिन तक धर्मरत्न को तंग किया गया। शरीर दुबला-पतला और अस्वस्थ होने के कारण डर था कि कुछ करने पर शायद मर ही न जाय। तब भी वह साँसत किये बिना छोड़ना नहीं चाहते थे। धर्मरत्न ने कहा—'अच्छा कल सब विस्तारपूर्वक बतला दूंगा।' रातभर धर्मरत्न अपने मन में सोचते रहे, और एक निर्णय पर पहुँच गए। दूसरे दिन उन्होंने कहा कि मुझे जो बात कहनी है, उसे या तो प्रधान-मंत्री के सामने कहूंगा, या हजुरिया-जरनैल नर शमशेर के सामने। नर शमशेर दो और

राणा-जरनैलों के साथ जब धर्मरत्न से बयान लेने के लिए तैयार हुआ, तब धर्मरत्न ने कहा कि मुरलीधर और दूसरे सभी आदमियों को यहां से हटा दिया जाय। तीनों जर्नेलों के रह जाने पर धर्मरत्न ने कहा— "मैं तो पेट के लिए ह्लासा में नौकरी कर रहा था। सारनाथ में मुरलीधर से भेंट हुई। उन्होंने मुझे समझाया कि हम लोगों का हाड-मांस राणा चूस रहे हैं, हमारी छोरी-बेटी को खराब करते हैं आदि-आदि। कई दिन समझाने के बाद मेरी बुद्धि पर असर हुआ। मुरली ने ही नेहरू से मिलाने का प्रबन्ध किया और उन्हें अभिनन्दन-पत्र दिलवाया। मैं केवल उनके हाथ की कठपुतली था।' मुरली के मुंह राणा लोगों के एक एक जघन्य पाप की पते की बातें कहकर धर्मरत्न राणा जरनैलों को मुरली के ऊपर पूरी तौर से बिगाडने में सफल हुए।

सब लोगों का बयान ले लिया गया था। विचार करने के लिए चारों कमांडिंग जरनैलों और दूसरे उच्च अधिकारियों की बैठक हुई।

बैठक में जो कुछ कार्रवाई होती, उसकी खबरें सिपाही कैदियों के पास पहुंचा देते। आंख मूंदकर शासकों की आज्ञा माननेवाले सिपाहियों में यह नया परिवर्तन देखा जा रहा था, जिसका मतलब था कि राणाशाही को महल के षड्यंत्रों से चाहे भले ही खतरा न हो, लेकिन उसके लिए एक और खतरनाक शक्ति पैदा हो रही थी— जनता और उसका क्षोभ। इधर परिषद् के प्रधान टंक प्रसाद को धोखे से गिरफ्तार किया गया; पर उसने राणाओं को खरी-खरी सुनाई। उसकी

निर्भीक बातों को सुन-सुन कर राजबन्दियों की हिम्मत कई गुना बढ़ गई। सिपाहियों को पहले इतना ही बतलाया गया था कि यह ब्राह्मण और नेवार मिलकर पर्वतिया राज को खत्म करना चाहते हैं। अब राजबन्दी उनको समझाते थे कि राणाशाही किस तरह देश को लूट रही है और किस तरह ११ रुपये मासिक पर भूखे रखकर तुमसे देश पर अत्याचार कराया जा रहा है। सिपाहियों की आंखें खुलने लगीं; लेकिन तीस-चालीस हजार सिपाहियों में से सौ-दो सौ तक ही उनकी बातें पहुँच पाई थीं।

धर्मरत्न ने इस बैठक में भी वही रटन लगा रखी थी कि जो कुछ कराया, मुरलीधर ने।

बहादुर शमशेर ने धर्मरत्न को धमकाया, "तूने कुछ छिपा रक्खा है।" इसपर धर्मरत्न ने तेगबहादुर मल्ल की सारी बात कह दी, "मुट्ठी भर राणा क्या कर सकते हैं, यदि हम सब एक हो जायं।" बहादुर शमशेर ने नीला-पीला होकर तेगबहादुर को गिरफ्तार करके हवालात में बंद कर दिया, लेकिन दूसरे दिन छोड़ दिया। आखिर खुफिया नैतिक तौर से अत्यन्त गिरा आदमी तो होता ही है, लेकिन उसीसे काम भी तो लेना पड़ता है।

केसर शमशेर ने धर्मरत्न से पूछा—"तुम्हारा संबंध राहुल से भी तो है?"

"वह बौद्ध धर्म के मेरे गुरु हैं।"

इसपर पद्मशमशेर ने कहा कि दोनों बदमाश हैं।

सात दिन बाद सांझ के समय केदारमान 'व्यथित' (कवि), चन्द्रमान मास्के, पूर्ण नारायण सुब्बा, चित्तधर (कवि) और धर्मरत्न को बुलाया गया। पांचों के पैरों में चार-चार सेर की बेड़ियां डाली गई। उन्हें गिरफ्तार हुए अब एक महीना बीत चुका था।

कमांडिंग जरनैलों की सभा हुई। धिराज अपने तीनों पुत्रों सहित बहुत कुछ अभियुक्त की तरह लाये गये थे। इसके दो-चार दिन बाद गुरु-पुरोहित, अफिसर आदि के प्रतिनिधि तथा कुछ महाजन और प्रोफेसरों की सभा बुलाई गई। भाई-भारदारों के सामने बेड़ी सहित चालीस अभियुक्त पेश किये गए। युद्ध शमशेर मोटर में आये। आज उन्हें अपना वक्तव्य देना था, जिसके लिए धिराज और उनके तीनों पुत्रों को भी बुला लिया गया था। पेचवान की नाली युद्ध के मुंह में लगी हुई थीं। युद्ध ने एक लिखा कागज पढा—'इनका काम तुम लोगों ने सुना ही है। नारानहिटी में खूनीकांड करके सारे राणाओं को मारने का आयोजन किया गया था। कीडे ने हीरा फोड़ना चाहा। शुक्रराज ने हमारी शिकायत गांधी तक पहुंचाई। (सरकारी नौकर होते हुए भी महाराज की आज्ञा बिना शुक्रराज भारत जाकर गांधी से मिले, और ब्रह्मसूत्र के अपने अनुवाद पर माल-वीयजी आदि की सम्मति ली, यही उनका कसूर था।) इसके बाद युद्धशमशेर ने आगे पढ़ते हुए कहा— मुरलीधर, केदारमान, धर्मरत्न नेहरू के पास रोने गये, जो कि बहुत कमीना सोशलिस्ट है। फिर मनु और याज्ञवल्क्य के श्लोक

राजद्रोह के डंड के लिए उद्धृत किये जो बडे ही कठोर थे। आगे उदारता दिखलाते हुए युद्ध ने कहा— धर्मशास्त्र तो यह कहता है, लेकिन समयानुसार दंड में नरमी भी करनी चाहिए। फिर युद्ध शमशेर ने धिराज की सम्मति पूछी— "क्या करना चाहिए ?" धिराज ने कहा— "मौडरेट (नरम)।" इसपर दांत पीसते, बांह चढ़ाते हुए युद्ध ने पागल की तरह चीख कर कहा— "कड़ी सजा करो इन्हें।" गुरु लोगों से पूछने पर उनका जवाब था— "शास्त्रोक्त दंड देना चाहिए।" भारदारों की ओर नजर करके पूछा। उनमें से धमला ने कैपितल पनिशमेन्ट (मृत्युदंड) देने की राय दी। अभियुक्त सभी चुप रहे। शुक्रराज ने कुछ बिनती करनी चाही। उन्हें धमकाकर रोकते हुए युद्ध शमशेर ने कहा— "कड़ी सजाएं गर्छु।" और हुक्के की सटक हटा मोटर पर चढ़कर वहां से चल दिया।

आध घण्टा बाद पद्म, मोहन, केशर, आनन्द, शंकर, नरशमशेर जङ्गी अदालत के कर्मचारी रत्नमान काजी के साथ फैसला सुनाने के लिए आ मौजूद हुए। एक खतरनाक राजबन्दी गणेशमान के दादा रत्नमान काजी के हाथ में फैसले का कागज था, लेकिन उसे पढा दूसरे ने। सजा निम्म प्रकार हुई:—

शुक्रराज शास्त्री, धर्मभक्त, दशरथचन्द्र, सुब्बा पुर्णनारायण और गङ्गालाल— मृत्यु दण्ड, सर्वस्व हरण;

टङ्कप्रसाद, रामहरि शर्मा मुण्डी-दामल ॐ, जन्म कैद, अंश सर्वस्व हरण—

फत्तेबहादुर, चीनियालाल, गणेशमान, हरिकृष्ण श्रेष्ठ, पुष्कर नाथ उप्रेती, चूड़ाप्रसाद, कम्पौंडर चन्द्रमान डंगोल, गोविन्दप्रसाद, मुरलीधर (देशद्रोही जनताद्रोही), और बलबहादुर पाण्डे (आयु १७)— जन्म-कैद, सर्वस्व-हरण;

जीवराज शर्मा, धर्मरत्न, केदारमान 'व्यथित' और चन्द्रमान मास्के— १८ वर्ष कैद, सर्वस्वहरण। सिद्धिचरण ध्रुवनाथ दुवे, रामदास लेप्टेन, गणेशराज, करकटमान और मरीचमान १२ वर्ष कैद'अंश सर्वस्वहरण; चित्तधर, पूर्णबहादुर एम. ए. और फणिन्द्रराज हमाल ६ वर्ष कैद, खर्दार भूपालसिंह, व्यासजी शर्मा ज्योतीप्रदास ३ वर्ष कैद।

राणावंशी परीक्षित-नरसिंह को जन्मभर के लिए देशनिर्वासन की सजा हुई, साथ ही एक रुपया रोज भत्ता देना भी तै हुआ।

सजा सुना ने के बाद प्राणदण्ड पाये हुए अपराधियों को अलग करके बाकी को ले जाकर बन्द कर दिया गया।

जौ के साथ घुनका पिसना जरूरी था। खासकर राणाशाही अन्धेर नगरी में तो उसकी और भी सम्भावना थी। शुक्रराज शास्त्री को इसी कारण फांसी पर चढना पडा। इसी घुन की पिसाई में ज्योतिप्रसाद भी पकड लाये गये, जिनका काम था " हरे राम हरे राम " कहते हरिकीर्त्तन का प्रचार करना। ज्योतिप्रसाद ने जेल में आकर कहीं से खुकुरी ले अपनी गर्दन काट ली। खैरियत हुई घाव कम था और जल्दी ही ठीक होगया। उन्हें मिलिट्री अस्पताल में ले गये। बन्दियों को अगले दिन भद्रगोल जेल में भेज दिया गया। शुक्रराज को एक पेड पर लटकाकर फांसी दी

गई, धर्मभक्त को उसी तरह एक पेड़ पर एक पेड पर लटकाया गया। दशरथचन्द्र और गङ्गालाल को भचाखुसी के स्थान में गोली मारी गई। सुब्बा पूर्णनारायण भी तख्त पर चढाये जा रहे थे। पद्मशमशेर ने रुकवाया और उनका मृत्युदण्ड १८ वर्ष की और अंश-सर्वस्व के रूपमें परिणत कर दिया गया। फांसी पर चढे शहीदों की लाशें लटकती छोड दी गई जिससे जनता में आतंक छा जाय; किन्तु परिणाम उलटा हुआ। वृक्ष पूजे जाने लगे। इसपर धर्मभक्त के वृक्ष को जड के पास तक कटवा दिया गया और अब केवल सडक के किनारे ध्यान देकर ही उसके चिह्न को देखा जा सकता है। खेद है, आज भी इन स्थानों पर कोई परिचायक चिह्न नहीं है। पास बैठकर छोटी-छोटी चीजें बेचनेवाले आदमी से हमने पूछा तो उसने उठकर दिखला दिया। शुक्रराज शास्त्री का वृक्ष अब भी खडा है। कोई परिचायक सूचना न देने पर भी उसके तने पर लगे लाल टीके तथा चढाई हुई फूलमालाए उसकी विशेषता को बतलाती हैं।

भद्रगोल में तैंतीस राजबन्दी इकट्ठे रक्खे गए, जिनमें राणा-अदालत के शब्दों में "देशद्रोही, जनता द्रोही" मुरलीधर शर्मा भी थे। लोगों को चार कमरों में रखा गया था। टंकप्रसाद का प्राण केवल ब्राह्मण होने से बचा था, लेकिन उन्हें और रामहरि को "मुंडी-दामल" करके जातिच्युत करने का दंड दिया गया था। छः-सात दिन बाद उन्हे मूंडने के लिए ले गये; लेकिन उन्होंने पहले ही से अपने बाल साफ करवा लिये थे। दामल को शायद बर्बर शासन का चिह्न माना गया, इसलिए उनके दोनों गालों और ललाट को दागा नहीं गया, केवल लाल

रेखा बना दी गई । राजगुरु के आदेश से अब उन्हें ब्राह्मण-जाति से निकालकर विवाह पर १४ रुपया व्यय करनेवाली मतवाली (छोटी) जाति में मिला दिया गया ।

बाहर के क्रान्तिकारी, जो अब चौबीस घंटा एकसाथ रहते थे किसी दृढ अनुशासन या सिद्धान्तवाद के अभाव में आपस में लडने लगे । पहले नेवार और पर्वतिया का भेद शुरू हुआ; लेकिन वह वहीं तक कैसे रह सकता था ? नेवारों में भी श्रेष्ठ और दूसरों का भेदभाव पैदा हुआ और अंत में श्रेष्ठों में भी बाग:शेस्यो (अर्धश्रेष्ठ) और छग:शेस्यो (पूर्णश्रेष्ठ) का झगडा खडा हुआ । एक दिन मार-पीट भी हुई, जिसके बाद शान्ति स्थापित हो गई ।

नेवारों में चित्तधर, धर्मरत्न, चंद्रमान डंगोल, मरीचमान और कटकमान नँकर्मी भिन्न तथा बौद्ध थे । उन्होंने कहा— हम खाने-पीने में कोई छूतछात नहीं मानते । हमें जो खाना देगा, उसीके चौके में शामिल हो जायेंगे ।

किसी नेवार ने पागल ब्राह्मण को जूठा भोजन दे दिया, जिसपर ब्राह्मण लड पडे— हमारे ब्राह्मण को इन्होंने जूठा खिला दिया । इसी तरह का झगडा छ:-सात महीने तक चला । इसी बीच राजबन्दियों के लिए सेल (काल कोठरियां) तैयार हो गई । झगडा भी मन्दा पडा और अब लोगोंका ध्यान पढनेकी ओर गया । कैदियों को संस्कृत तथा धार्मिक ग्रन्थ ही मिल सकते थे । धर्मरत्न शिक्षा से करीब-करीब वञ्चित रह गये थे । अब यह जेल का पांच साल का (४० से ४५ तक) जीवन उन्हें

विद्यार्थी-जीवन के रूप में मिला और उसका उन्होंने खूब उपयोग किया। कागज-पेन्सिल की कडी मनाही थी; लेकिन वह चोरी-चोरी मिल जाती थी। कवियों और लेखकों ने धार्मिक पुस्तकों की पंक्तियों के बीच की खाली जगहों में अपनी कृतियों को लिखा। कैदियों को ६ छटांक चावल, एक मुट्ठी लकडी तथा नमक-मिर्च-तेल आदि के लिए एक नेपाली पैसा मिलता था। छः महीने पर नौ हाथ लंबा, डेढ हाथ चौडा खादी का कपडा दिया जाता। हां, वह अपने घर से कपडा मंगा सकते थे।

धर्मरत्न-जैसे कुछ लोगों ने रोज मिलनेवाले एक पैसे को मुरली पंडित को ट्यूशन के लिए देना शुरू किया। वे उन्हें संस्कृत ग्रंथ पढाते। तरुण पूर्णबहादुर (एम्. ए) सबसे अधिक अंग्रेजी पढे हुए थे। यह सरल आदर्शवादी तरुण अपने साथियों को अर्थशास्त्र, भूगोल, गणित, अंग्रेजी आदि पढाता। धर्मरत्न ने चंद्रमान मास्के से चित्र बनाना सीखना चाहा। सिद्धिचरण ने उन्हें कवि बनाने की कोशिश की। महाकवि चित्तधर ने पढाने के अतिरिक्त नेवारी भाषा में "सुगत-सौरभ" महाकाव्य लिखा। धर्मरत्न ने भी "अर्हत् नन्द" के नाम से अश्वघोष की अमरकृति "सौन्दरानन्द" की तरह एक महाकाव्य किताब की पंक्तियों के बीच में पैंसिल से लिख डाला। जेल में साहित्य-गोष्ठियां होती, समस्या-पूर्तियां भी चलती, राजनीति और दूसरे विषयों पर व्याख्यान होते। वहां जगह थोडी थी, लेकिन चावल-दाल को कुछ और प्रिय बनाने की आवश्यकता थी, इसलिए लोग वहीं साग-सब्जी उगाते थे। इस तरह एक

साल (१६४०) कालकोठरी में गुजरा। बलबहादुर पांडे १७ वर्ष का तरुण था। वह वहीं पागल होकर ग्यारह महीने बाद मर गया। वह गुरुजी के खानदान का था। डाक्टर ने जब पूछा कि तुम क्या चाहते हो, तो उसने कहा— "पिस्तौल ला दो, मैं मोहनशमशेर को मारूंगा।" बलबहादुर के पागलपन का असर कालकोठरी में एकांत जीवन बिताने वाले औरों पर भी थोडा-थोडा पडने लगा था।

१६४१ में कुछ लोग जेल से भागने की तजबीज सोचने लगे। टंकप्रसाद का दल इसके विरुद्ध था; लेकिन तरुण इसके पक्ष में थे। जेल के दो मेहतरों को मिलाकर दीवार तोडने का काम शुरू किया गया। रात को ईंट निकाली जाती और उसकी जगह कीचड रख दिया जाता। बेडी भी निकालने लायक कर ली गई थी। जिस रात को १ बजे भागने की तैयारी हो चुकी थी, उसी रात १२ बजे जेलवालों ने पता पाकर हल्ला बोल दिया। एक मेहतर इतना पीटा गया कि घायल होकर छः महीने में मर गया। कैदियों में से किसी ने ईंट निकालना स्वीकार नहीं किया।

इस असफलता के बाद धर्मरत्न और उनके साथी पढने-पढाने में तल्लीन हो गए। भीमशमशेर के समय से ही खड्गमानसिंह "प्रचंड गोरखा दल" के आरोप से बन्दी थे। नये राजबन्दियों के भद्रगोल में आने के तीन-चार महीने बाद वह भी वहीं लाये गए। उनकी वैष्णव-कट्टरता ने और भी आग में पानी का काम दिया; लेकिन पहले प्रयत्न के निष्फल होने पर दो ढाई साल बाद १६४३-४४ में फिर भागने की तैयारी होने

लगी। इसमें अगुवा थें गणेशमान। इस बार ईंट निकालने का खयाल छोड दिया गया था और बाहर से अंकुश मंगाकर रस्सी में बांध उसके सहारे दीवार फांदनी थी। अंकुश दीवार पर फंस जाय, यह अपने बस की बात नहीं थी। छः महीने तक कोशिश करने के बाद एक रात अंकुश दीवार में फंस गया। गणेशमान रस्सी पकड दीवार लांघकर उधर उतर गए। चन्द्रमान कम्पौंडर भारी होने से गिर पडे और पहरेवालों ने देख लिया। पूछने पर "भाग नहीं सका" कहकर उन्होंने हंसी में उसे उडाना चाहा। १ बजे रात की बात थी। पहरेवालों ने तीन घंटे यों ही खो दिए। ४ बजे पूछा—तुम अकेले थे या दूसरा भी कोई। तो चन्द्रमान ने कहा—मै अकेला था। पहरेवालों ने अंकुश देख लिया। लेकिन तबतक गणेशमान को भागे चार घंटे हो चुके थे। कम्पौंडर को पकडकर सिंह दरबार भेज दिया गया। सवार दो-तीन दिन तक इधर-उधर बेकार दौड-धूप करते रहे। गणेमान कसाई का भेस बनाकर भैंसा खरीदने बुटवल की ओर चल दिये और सीमा पार नौतनवा में पहुंच कर सुरक्षित हो गए।

महायुद्ध समाप्त हो गया। दुनिया में जो परिवर्तन हो रहे थे, उसका असर नेपाल पर पडे बिना कैसे रह सकता था? राणा-शासकों में भी कितने भविष्य से निराश हो चुके थे! पद्मशमशेर जैसा नम्र, उदार और दब्बू आदमी प्रधान-मन्त्री होने वाला था। पाँच साल बाद संबत २००२ भाद्र मास की इन्द्र-यात्रा से एक दिन पहले टंकप्रसाद, रामहरि, गोविंदप्रसाद, चूडाप्रसाद, खड्ग-मानसिं और चन्द्रमान डंगुल को छोड़ बाकी सब राजबंदियों को

और चन्द्रमान डंगुल को छोड बाकी सब राजबन्दियों को इस शर्त के साथ छोड दिया गया कि वह प्रतिमास पुलिस में हाजिरी देते रहेंगे और विशेष राहदारी (पासपोर्ट) के बिना उपत्यका से बाहर नहीं जायेंगे।

धर्मरत्न के छूटकर आने पर दादी ने ब्याह करने का आग्रह शुरू कर दिया। महीने भर बाद एक लडकी किसी भोज में आई, उसकी आंखों पर चश्मा लगा हुआ था। ल्हासा के व्यापारी हीराकाजी की लडकी हीरादेवी है— यह भी लोगों ने बतला दिया। उसी से व्याह करने की बात चल रही थी। धर्मरत्न ने अपनी भावी पत्नी को चिट्ठी लिखकर कह दिया— "मेरे जैसे राजनीति में पडे बे-घरबार के आदमी के साथ रहने में तुम्हें कष्ट-ही-कष्ट होगा। लिखने ही से संतोष न कर एक दिन दोनों ने खुलकर बातें की। हीरादेवी ने कहा— "बुरे आदमी होते तो तुम राजनीति में क्यों पडते?" हां, उस समय नेपाम में राजनीति में पडने का अर्थ था जेल, फाँसी और सर्वस्वहरण। बाप तैयार था, लेकिन सौतेली मां नहीं चाहती थी। एक दिन हीरादेवी घर से भाग आई और दोनों का ब्याह हो गया; लेकिन उनका मधुमास एक महीने का भी नहीं हो पाया। धर्मरत्न अब कलकत्ता पहुंच गये। वहां गणेशमान और दूसरे नेपाली क्रांतिकारियों से उनकी भेट हुई। डेढ मास बाद फिर वह नेपाल लौट आये।

अब राजनीति में फिर गर्मी आने लगी। मनमोहन अधिकारी के नेतृत्व में विराटनगर के मिल-मजदूरों ने जबर्दस्त हडताल की। १९४७ में अंग्रेज भारत छोडकर चले गए। इसपर हर्ष

प्रकट करने का नेपालीराष्ट्रीय नेताओं का आदेश था। टोले के लोगों का बुला सलाह कर १५ अगस्त को प्रसिद्ध काष्टमण्डप के नीचे गान्धीजी तथा दूसरे नेताओं का चित्र रख, हीरादेवीके सभापतित्वमें सभा करने का निश्चय हुआ। हीरादेवी उस समय एक छोटा-मोटा स्कूल चला रही थी। वह अपने पैंतीस बच्चों के साथ जलूस बनाकर सभा-स्थान पर आई। जलूस में कोई राजनीकित नारा नहीं लगाया गया, बल्कि हिन्दू "हरे राम" और बौद्ध "तारे माम" का धार्मिक वाक्य उच्चार रहे थे। इस पर भी राणा शाही कर्नल ने धमकाकर सभा को बन्द करने के लिए कहा और छः-सात मास की अपनी पुत्री धर्मदेवी के साथ हीराडेवी गिरफ्तार करके जेल भेज दी गई। उसी दिन उनके पति आदि नौ और आदमी पकडे गए। काठमाण्डू की तरह पाटन में भी भारतीय स्वतन्त्रता के उपलक्ष में प्रसिद्ध गांधीवादी तुलसी मेहर अपने ४५ साथियों के साथ जलूस निकालने के अपराध में पकड लिये गए। इसी तरह उपत्यका के तीसरे नगर भादगाउँ में भी नौ आदमी पकडे गए। बन्दी सत्याग्रही थे, इसलिए उनके भागने का डर नहीं था। जिस घर में इन लोगों को बन्द किया गया था, उसमें खटमलों और पिस्सुओं की भरमार थी। पानी-बरसा तो वह खटिये के नीचे तक भर गया। वहीं दस कदम पर पेशाब और पाखाना पडा हुआ था। साथ ही हवालात बन्दीगृह का ही काम नहीं देती थी, बल्कि भैंस-गाय का कांजीहौज (पशुकारा) भी यही था। इसी जगह स्त्रियां पुरुष और बच्चे दस दिन रक्खे गए। इस बर्ताव के लिए बन्दियों को भूख-हडताल भी करनी पडी।

हीरादेवी तथा कुछ और आदमी छोड दिये गए। बाकी अब भी उसी गन्दी हवालात में बन्द थे। इस पर लोगों ने बेहतर घर में रखने के लिए भूख-हडताल की और अधिकारियों को उसे मानना पडा। गिल्टी बुखार के कारण धर्मरत्न को अस्पताल ले जाकर आपरेशन किया गया, जहां वह जान-बूझकर घाव अच्छा न होने देते थे। इस तरह वह वहां डेढ महीना रहे। इसके बाद सबको जेल में भेज दिया गया। इस जेलयात्रा में — जो छः मास से अधिक की नहीं थी — उन्हें बौद्ध धर्म के साथ मार्क्सवाद और समाजवाद भी पढने-सुनने का मौका मिला। वही तुलसीलाल एम. ए. नये राजनीतिक विचारों पर उतरे। इसी छः महीने के कारावास के समय धर्मरत्न ने "जगत् ज्योति" नाम से पर्वतिया (नेपाली) भाषा में बुद्ध की एक संक्षिप्त जीवनी लिखी।

उस समय नेपाल के राष्ट्रीयतावादी नेताओं में आपस में भारी झगडा उठ खडा हुआ था, जिसकी जड में नेता बनने की धुन काम कर रही थी। कोइराला और रेगमी दोनों अपने को कांग्रेस का मुखिया मानते थे। धर्मरत्न चाहते थे कि दोनों में मेल हो जाय। भारत आने भर के लिए भी उनके पास पैसा नहीं था। इसलिए पचास रुपये पर अपनी एक बुद्ध-मूर्ति को बन्धक रक्खा और बनारस चले आये। बहुत कोशिश की। इसी सिलसिले में वह समाजवादी नेता डा० राममनोहर लोहिया से मिले। विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला से पहली बार उनका साक्षात्कार हुआ। गणेशमान, सूर्यबहादुर, धर्मरत्न तीनों ने बातचीत करके इस बात पर जोर दिया कि

(१) चुनाव होने ही वाला है, इसलिए तबतक श्री डिल्लीरमण रेगमी का नेतृत्व रहने दिया जाय, (२) अविश्वास का प्रस्ताव करके जबर्दस्ती किसी को हटाना या रखना नहीं चाहिए। भारत में आये नेताओं से यह भी शिकायत की गई कि आप जैसे नेता देश से बाहर चले आये है और हमारे सब साथी कैद में हैं। पर धर्मरत्न अपने इस मिशन में सफल नहीं हुए। इसपर काठमाण्डू के लोगोंने निश्चय किया कि हम रेगमी और कोइराला दोनों में से किसी का समर्थन न कर तटस्थ रहेंगे। धर्मरत्न एक बार फिर कलकत्ता गये लेकिन इस बार भी उन्हें असफल हो लौटना पड़ा। इस पर अब नेपाल लोकतान्त्रिक दल के नाम से एक नया दल कायम किया गया, जिसके अज्ञात संचालक और पोषक धिराज, सुवर्णशमशेर और महावीरशमशेर थे, और ज्ञात नेता थे सूर्यप्रसाद उपाध्याय, महेन्द्रवीक्रम शाह और प्रेमबहादुर कंसाकार। कोइराला और रेगमी दोनों दल विरोधी थे। धनी संरक्षकों के दल में काम करनेवालों के उपर रुपया लेन का आक्षेप होना स्वाभाविक है। नेपाल में इन लोगों ने यह निश्चय किया कि पद्मशमशेर ने जो सुधार-विधान तैयार किया है, उसको ही लेकर काम आगे बढाया जाय। साथ ही यह भी सुझाव रक्खा गया कि दल का केन्द्र नेपाल में रहे, बाहर केवल प्रचार-विभाग काम करे।

इसी सिलसिले में ग्यारह आदमियों को मिलाकर नेपाल प्रजा-पंचायत का भी संगठन किया गया और ऊपर-ऊपर से शासकों के प्रति भक्ति दिखलाते हुये यह प्रचार किया

जाने लगा कि बाप (राणा प्रधान-मंत्री) का दिया हक बेटे को मिलना चाहिए। दो सप्ताह के भीतर ही काठमांडू में पंचायत के १५ सौ, पाटन में ४ सौ और भादगाऊ में ७ सौ सदस्य हो गए। यह भी निश्चय किया गया कि पद्म-संविधान को यदि मोहन शमशेर ठुकरा दे तो सत्याग्रह किया जायगा। राणा धोखे में आने वाले थोड़े ही थे। उन्होंने सभाबंदी के लिए पुर्जी निकाल दी। पंचायत वालों ने कहा— राणाओं ने अपने थूके को आप ही चाटा। विधान के सामने उनकी पुर्जी अवैधानिक है। पंचायत के तीन प्रतिनिधियों ने सिंह-दरबार में जाकर जब पुर्जी की अवैधानिकता बारे में कहा तो हजुरिया जरनैल ने उत्तर दिया— "वही पुर्जी विधान है।"

अब उपत्यका के नगरों में फिर गर्मी पैदा हो गई थी। व्याख्यान और सभा करना बन्द था। ऐसी ही एक सभा में हीरादेवी ने व्याख्याता की माला पहनाई, जिसपर पुलिस वाले नाम लिख ले गए। विश्वेश्वर ग्रुप इसके खिलाफ था, रेग्मी और लोकतांत्रिक दल इसके समर्थक थे। पंचायत वालों ने कहा— यदि तीनों पार्टियां मिल जायं तो हम भी अपनी पंचायत को उसमें मिला देंगे। सत्याग्रहियों की सूची बनाई जाने लगी, जिसमें तुरंत ही छः-सात सौ आदमियों ने अपना नाम लिखा दिया। त्रिपुरवर भी सत्याग्रह के पक्षपाती थे; लेकिन उनके नेता विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के सत्याग्रह के विरोध करने के कारण यह डर हो गया था कि शायद त्रिपुरवर आगे नहीं बढ़ेंगे। इसपर धर्मरत्न स्वयं पहले जाने के लिए तैयार हो गये। तीनों नगरों में सत्याग्रह

शुरू हो गया, और महीने-डेढ़-महीने के भीतर तीन सौ बन्दी जेलों में पहुंच गये। उस समय विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला अन्तर्धान थे और अपनी असावधानी के कारण त्रिरत्न तुलाधर के घर में पकड़ लिये गये।

राणा पुलिस अब पूरी तौर से पशुता पर उतर आई थी। वह सत्याग्रहियों के घर की हरेक चीज को तोड़-फोड़ कर बरबाद करती। बहु-बेटिओं की इज्जत बरबाद करने की जब नौबत आ रही हो तो फिर सत्याग्रहहियों को कौन अपने घर में शरण देने के लिए तैयार होता? राष्ट्रकर्मी मारे मारे फिर रहे थे, लेकिन धर्मरत्न ज्यापू (नेवार किसान) का भेस बदले जगह-जगह घूमकर प्रचार कर रहे थे। उनकी पत्नी हीरादेवी भी सत्याग्रह के सङ्गठन में जुटी हुई थीं। जिस दिन उनके लड़का हुआ, उसी दिन वारंट आया। बच्चा पैदा होते समय दो सौ सिपाही पाँच छः दिन तक उनका घर घेरे रहे। पन्द्रह दिन के बच्चे का मुंह देख, हीरादेवी के हाथ में पंद्रह रुपया थमाकर चार आदमियों के साथ धर्मरत्न उपत्यका से निकल पडे और राणाशाही के आदमियों से आंख बचाते चौथी रात को २ बजे भारत की सीमा के भीतर आदापुर स्टेशन (चम्पारन) पहुंचे। उधर उसके पंद्रहवें दिन हीरादेवी एक महीने के अपने बच्चे को गोद में लिये जेल चली गई।

सत्याग्रह से जनता की शक्ति का पता तो लग गया; लेकिन यह भी साफ मालूम होता था कि जबतक सभी दल एक होकर कोशिश नहीं करते, तबतक राणाशाही को दबाया नहीं जा सकता। फिर मेल-मिलाप के लिए जोर-शोर से

कोशिश होने लगी। पटना में सभी दलों के आठ प्रतिनिधियों की बैठक हुई। बडे भाई मातृकाप्रसाद कोइराला मेल के विराधी थे। इसपर लोकतान्त्रिक कांग्रेस के प्रतिनिधि सूर्यप्रसाद ने रेग्मी और पञ्चायत के मिलने की बात कही। लेकिन फिर नेताओं में पद के लिए झगडा हो गया। बनारस में जाकर धर्मरत्न ने रेग्मी से बातचीत की। उनका रङ्गा की तरह का अपना एक दल कुछ थोडे से आदमियों का था। उधर विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला की पीठ पर भारतीय सोशलिष्ट नेता थे। राष्ट्र-कर्मियों पर इस बक्त बडी बुरी घडी बीत रही थी। खाने का कठिनाई खूब था और कुछ तो कहते थे कि इस जीवन से तो भद्रगोल जेल ही अच्छा था।

भारत में रहने का कोई फायदा न देख धर्मरत्न नेपाल लौट आये। तबतक हीरादेवी जेल से छूट आई थीं। उन्हें हर पांचवें दिन पुलिस में हाजिर देने की हिदायत थी। नेपाल लौट कर धर्मरत्न उत्तर के सीमान्ती इलाके श्यबरु में डेढ महीने तक लडकों को पढाते रहे। लेकिन, जहाँतहाँ फिरने से कहाँ काम चलने वाला था? अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता चार सौ की संख्या में जेल में पडे हुए थे। धर्मरत्न ने उनको चिट्ठी लिखकर देश की अवस्था बत लाई और कहा— "नेता लोग आपस में लड रहे है। पार्टियां निष्क्रिय हैं तो भी भारत की सहानुभूति हमारे साथ है। जनता के उत्साह को मरने देना हमारे लिए अच्छा नहीं होगा। राणा-शाही अपनी बदनामी के डर से छोड़ने को इच्छुक है। तुम्हें भी छोटी-मोटी शर्त पर जेल से बाहर निकल आना चाहिए। कम्यूनिस्त चीन तिब्बत पर दावा कर रहा है। बाहर आकर काम करने का यह अच्छा मौका है।" धर्मरत्न ने चिट्ठी टंकप्रसाद के

पास भेजी थी; लेकिन उन्होंने उस चिट्ठी को किसी को दिखलाया भी नहीं। लोग तो किसी शर्त पर भी निकल आने के लिए तैयार थे और बहुतों ने माफी भी मांग ली।

सत्याग्रह चाहे और तरह से सफल न रहा हो; लेकिन उसके कारण अब जनता के हृदय से कानून और जेल का डर बहुत कुछ हट गया था। १६४६ अक्टूबर नवम्बर में धर्मरत्न भी अब बाहर निकल कर घूमने लगे। लेकिन पुलिस ने पकड़कर थाने की हवालात में रख दिया। हीरादेवी की आर्थिक अवस्था बडी बुरी थी; लेकिन तब भी इधर उधर से चावल लेकर भात पका पति के पास भेजती। तीन महीने हवालात में रखने के बाद धर्मरत्न को सिंह-दरबार में भेजा गया इस समय विश्वेश्वर ग्रुप का सात्याग्रह चल रहा था। गिरफ्तार बन्दी "राणाशाही मुर्दाबाद" का नारा लगाते पुलिस की हिरासत में जब निकले तो लोगों में बिजली-सी दौड गई, वह भारी संख्या में जमा हो गये। धर्मरत्न को भद्रगोल जेल में रखा गया। यहीं पर उन्होंने नेवार भाषा में "सँदेशया लिसल" (तिब्बत देश का उत्तर) मामक खण्ड काव्य लिखा। तीन महीने वहाँ और फिर नखूके जेल में नौ महीना रहकर राणाशाही के खत्म होने के बाद उन्हें मुक्ति मिली।

बाहार आकर धर्मरत्न ने देखा कि चारों तरफ चारतारा वाले कांग्रेसी झण्डे का जोर है। जहाँ पहले लोग घर घर में राणा-ताणाशाही की तस्वीरें टांगने में होड लगाये हुए थे, अब वह चार-तारा झण्डा टांगने में उसी तरह होड लगा रहे थे। लेकिन नेताओं में इस वक्त भी फूट का राज था। धर्मरत्न जेल से निकलते ही अब धुंआधार भाषण दे रहे थे। कांग्रेसका गंगा-जमुनी

मन्त्रिमण्डल बन चुका था; लेकिन मन्त्रियों की चाल–ढाल को देख कर लोगों में असन्तोष पैदा होने लगा था। धर्मरत्न के घर की हालत को किसी तरह धिराज ने जान लिया और उन्होंने उनकी पत्नी के पास कुछ सहाकता भेज दी। तरुण कोइराला अधिकारारूढ थे। वह बड ठाटबाट से राजधानी में निकलते। रेग्मी को मोहन शमशेर का कृपापात्र कहकर बदनाम किया जाता था। उन्हें लोग बोलने तक का अवसर नहीं देते थे। इसी समय धर्मरत्न ने साहस करके अपने सभापतित्वमें रेग्मी को भाषण कराया। सानु-टुण्डी खेल में २ बजे के समय रेग्मी की राष्ट्रीय कांग्रेस की यह खुली सभा हुई, रेग्मी के भाषण पर किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। धर्मरत्न के व्याख्यान में बात–बात पर ताली पिट रही थी। धर्मरत्न की वाणी का चमत्कार आज राजधानी की जनता के देखने में आया और चारों ओर उसकी चर्चा सुनाई देने लगी। आखिर नेवार प्रधान नेपाल–उपत्यका में धर्मरत्न जैसा जादू का असर रखने वाला वक्ता भी तो नहीं था। सभी राजनीतिक संस्थाएं उन्हें अपनी सभाओं में भाषण देने के लिए निमन्त्रित करने लगीं और जाहने लगी कि वह उनके सदस्य हो जायं, लेकिन धर्मरत्न यमी— अब इसी नाम से वह प्रसिद्ध थे— भिन्न-भिन्न दलों के दलदलों के तजर्बे से ऊब गये थे और उनमें शामिल होने के लिए तैयार नही होते थे।

१९५१ में नेहरु नेपाल में आनेवाले थे। सभी दल उनके स्वागत के लिए होड लगाये हुये थे; लेकिन नेपाल की जनता नई सरकार के शासन में अभाव-ही-अभाव देखकर असन्तुष्ट हो चुकी थी, जिससे कोई भी लाभ उठा सकता था। यह तो निश्चय ही है,

कि दिल्ली के संबंध के कारण सरकार का खर्च कई गुना बढ गया—पहले राणा तानाशाही खजाने पर हाथ साफ करती थी, अब वही काम नौकरशाही कर रहीथी। चारों तरफ भाई-भतिजे-भांजों भरमार और भ्रष्टाचारका अखण्ड राज्य था। वामपक्षी लोगों ने नेहरुको काला झण्डा दिखलानेकी तैयारी शुरूकी। किसान सङ्गसे धर्मरत्न का भी घनिष्ट सम्बन्ध था। वह भी काले झण्डे में शामिल होना चाहता था। धिराज ने धर्मरत्न को बुलाकर कहा की अपने अतिथि के लिए ऐसा करना ठीक नहीं होगा। धर्मरत्न ने एक बार सङ्ग में निश्चय करा लिया कि काला झण्डा नहीं दिखायेंगे; लेकिन रात को निश्चय बदल दिया गया। काला झण्डा दिखलाया गया। सरकारी गोलियों से चिनीया काजी तरुण ने प्राण गंवाये एक ओर गृहमन्त्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला जनता के कोप भाजन हुये तो दूसरी ओर गङ्गा-जमुनी मन्त्रिमण्डल में राणाओं का रहना मुश्किल हो गया। धर्मरत्न ने मोहन शमशेर से मिल कर कहा— "यदि आप अपनी पद–मर्यादा को बनाये रखना चाहते है और राणाओं को भी, तो राणा लोगों का जितना धन विदेशी बैंकों में लगा हुआ है, उसे देश में मंगाकर सूद पर लगा दीजिये, इससे देश की औद्योगिक उन्नति बडी तेजी से होगी और राणाओं के प्रति लोगोंका पुराना भाव कम होगी।" मोहन शम्शेर देश से सदा निर्वासित होने के लिए बाध्य हो रहे थे। तन्हों ने यमी की बात को बडे ध्यान से सुना और कहा— "सुझाव तो अच्छा है। में और लोगों से पूछकर सात दिन बाद जवाब दूंगा।" लेकिन अपने लूट के विदेशी बैंक में सुरक्षित जमा पचासों करोड रुपयों को राणा लोग नेपाल में क्यों लौटान लगे।

गङ्गा-जमुनी मन्त्रिमण्डल तोड दिया गया। बडे भाई मातृका प्रसाद कोइराला ने प्रधानमन्त्रि का पद संभाला। अब सारे मन्त्री कांग्रेस के थे। इसी समय धिराज के कहने पर धर्मरत्न भी "माननीय धर्मरत्न यमी" के नाम से मन्त्रिमण्डल में उपमन्त्री बने और नौ महीना बाद मातृका मन्त्रिमण्डल के भंग होने पर वह "भूतपूर्व मन्त्री" बन गए।

धर्मरत्न यमी तरुणाई में प्रायः अशिक्षित-से थे। गरीबी के जीवन से वह बचपन ही से अभ्यस्त थे उनकी जाति (उदास नेवार) दब्बू-बनिया कही जाती थी। इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वह किस तरह सुशिक्षित सुसंस्कृत हो कर संघर्षों के भीतर आगे बढे, यह उनके इस जीवन से मालूम होगा।

यमिजी की कृतियां:—

नेपाली भाषामें

(१) समाजको एक झलक— मू. [illegible])

(२) बुद्ध मानिस हुन्—

(३) जगत् ज्योति—

(४) शहीदी रक्त —

नेपाल भाषामें

(५) न्वाखँ पुचल— मू. ।१२

(६) सँदेशया लिसल— मू. ।३२

(७) विश्वन्तरया मधात दान— मू. ।२५

(८) अर्हत नन्द (महाकाव्य)

(९) लिधु— (प्रेसमें)

मिलनेका पत्ता

मानदास सुगतदास असन टोल
कमलाछी, काठमाण्डू नेपाल।